National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

**ISSN: 2454-9177**
NJHSR 2026; 1(64): 218-221
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

**Dr. Darin Sarkar**
Assistant Professor & H.O.D.,
Department of Sanskrit,
Dr. Meghnad Saha College,
Ranipur, Itahar, Uttar Dinajpur,
W.B.-733128.

**Correspondence:**
**Dr. Darin Sarkar**
Assistant Professor & H.O.D.,
Department of Sanskrit,
Dr. Meghnad Saha College,
Ranipur, Itahar, Uttar Dinajpur,
W.B.-733128.

# प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था: कौटिल्य के अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में

**Dr. Darin Sarkar**

**भूमिका:** अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य द्वारा रचित एक प्राचीन भारतीय राजनीति का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, धर्मनीति, दण्डनीति, कृषि, व्यवहारविद्या तथा चतुर्विद्या (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति) आदि के विविध विषयों पर विस्तार से वर्णन किया गया है। इसकी शैली उपदेशात्मक और निर्देशात्मक है। इसके रचनाकार का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटिल्य ('कुटिल' से व्युत्पन्न) और स्थानीय नाम चाणक्य (पिता का नाम 'चणक' होने से) था। कौटिल्य या चाणक्य या विष्णुगुप्त का जन्म तक्षशिला में एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता, तीक्ष्ण बुद्धि और तीक्ष्ण निर्णय के कारण उन्होंने वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, दण्डशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, रसायनशास्त्र, वास्तुशास्त्र आदि विविध विषयों पर असाधारण ज्ञान और विशेषज्ञता हासिल की। **"पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशः तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।"**[1] अर्थात्-प्राचीन आचार्यों ने पृथ्वी जीतने और पालन के उपाय बतलाने वाले जितने अर्थशास्त्र लिखे हैं, प्रायः उन सबका सार लेकर इस अर्थशास्त्र का आचार्य कौटिल्य ने निर्माण किया है।

किसी भी देश का शासक मानव शरीर के सिर के बराबर होता है। कौटिल्य का मानना था कि कोई भी देश एक मानवतावादी संस्था है। कौटिल्य के अनुसार, एक आदर्श राजा वह है, जो नेतृत्व के उच्चतम गुणों का आधार हैं, बुद्धि का आश्रय हैं, और शक्ति तथा सदाचार का प्रतीक हैं। एक राजा में नेतृत्व के सभी गुण होने चाहिए, जिससे वह अपने अनुयायियों के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। जिस प्रकार एक कुलीन परिवार का निर्माण होता है, उसी प्रकार एक आदर्श राज्य का निर्माण होता है। एक आदर्श राजा में कुछ गुण होने चाहिए, जैसे - सत्यवादिता, वीरता, बुद्धिमत्ता, धर्मपरायण, अनुशासित, उत्साही, पड़ोसी राजाओं के साथ अच्छे संबंध, उच्च गुणवत्ता वाले मन्त्रीमण्डल आदि। राजा की बुद्धिजीवियों को अपने वश में रखने और दूसरों की बात मानकर उनके बीच लोकप्रियता हासिल करने की कुशलता, अच्छे आचरण से प्रजा पर शासन करने की कुशलता और हमेशा झूठ का खंडन करने की कला राखनी चाहिए। इन सभी व्यक्तिगत गुणों के साथ-साथ हि एक राजा को वाक्पटु और अधिमानतः दयालु हृदय वाला भी होना चाहिए। राजा को अपनी भावनाओं का त्याग कर देना चाहिए। साथ ही साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और वासना का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए। कौटिल्य की अवधारणा में राज्य एक पूर्ण राजतंत्र था, लेकिन सम्राट कभी निरंकुश नहीं होगा। राजा शासक लोगों के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हैं, जो राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करता है, जो शासक के लिए जनता के समर्थन के आश्वासन को भी प्राथमिकता देता है।

**राजव्यवस्थाः** कौटिल्य के अनुसार, जो राजा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए अपने कर्तव्य का न्यायपूर्वक पालन करता है। वह लोगों की खुशी में ही खुद को खुश मानते हैं और लोगों का हित ही उनका हित है। सर्वलोकहितकारी राष्ट्र का जो स्वरूप कौटिल्य को अभिप्रेत है, वह 'अर्थशास्त्र' के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट है-

**प्रजासुखे सुखं राज्ञ: प्रजानां च हिते हितम्।**
**नात्मप्रियं हितं राज्ञ: प्रजानां तु प्रियं हितम्॥**[2]

अर्थात्-प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजाके हित में उसका हित है। राजा का अपना प्रिय (स्वार्थ) कुछ नहीं है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है। परन्तु साम्प्रतिक राजनैतिक परिस्थिति में इसके विपरीत आर्थ-सामाजिक राजनैतिक परिस्थितिया परिलक्षित होता है। साम्प्रतिक समय का सभी प्रशासनिक अधिकारीयों तथा नेता-नेतृयो ने अपने अपने हित-साधन करने में प्रयत्नशील है। लोक-कल्यान, सामाजिक-सद्भावना, मानवमूल्य सभी आज समाज से दुर भागते जा रहे है। वर्तमान समय मे रक्षक हि भक्षक हते जा रहे है। इसिलिए राजा को धर्म परायन होना चाहिए। आचार्य कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र मे वर्णन किया है -

**तस्मात् स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।**
**स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह न नन्दति॥**[3]

अर्थात्- राजा प्रजा को अपने धर्म से च्युत न होने दे। राजा भी अपने धर्म का आचरण करे। जो राजा अपने धर्म का इस भांति आचरण करता है, वह इस लोक और परलोक में सुखी रहता है। एक राजा का धर्म युध भूमि में अपने दुश्मनों को मारना ही नहीं होता अपितु अपने प्रजा को बचाना भी होता है। इस अर्थशास्त्र में एक ऐसी शासन-पद्धति का विधान किया गया है जिसमें राजा या शासक प्रजा का कल्याण सम्पादन करने के लिए शासन करता है। राजा स्वेच्छाचारी होकर शासन नहीं कर सकता। उसे मन्त्रिपरिषद् की सहायता प्राप्त करके ही प्रजा पर शासन करना होता है। राज्य-पुरोहित राजा पर अंकुश के समान है, जो धर्म-मार्ग से च्युत होने पर राजा का नियन्त्रण कर सकता है और उसे कर्तव्य-पालन के लिए विवश कर सकता है।

**सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः। अर्थस्य मूलं राज्यं।**
**राज्यस्य मूलं इन्द्रिय जयः। इन्द्रियाजयस्य मूलं विनयः। विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा॥**[4]

अर्थात् सुख का मूल है, धर्म। धर्म का मूल है, अर्थ। अर्थ का मूल है, राज्य। राज्य का मूल है, इन्द्रियों पर विजय। इन्द्रियजय का मूल है, विनय। विनय का मूल है, वृद्धों की सेवा।

जैसे कहा गया है, इसका मुख्य विषय शासन-विधि अथवा शासन-विज्ञान है: **कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधि: कृत:**[5]। कौटिल्य ने राजाओं के लिये शासन विधि की रचना की है। इन शब्दों से स्पष्ट है कि आचार्य ने इसकी रचना राजनीति-शास्त्र तथा विशेषतया शासन-प्रबन्ध की विधि के रूप में की। अर्थशास्त्र की विषय-सूची को देखने से (जहां अमात्योत्पत्ति, मन्त्राधिकार, दूत-प्रणिधि, अध्यक्ष-नियुक्ति, दण्डकर्म,षाड्गुण्यसमुद्देश्य, राजराज्ययो, व्यसन-चिन्ता, बलोपादान-काल, स्कन्धावार-निवेश, कूट-युद्ध, मन्त्र-युद्ध इत्यादि विषयों का उल्लेख है) यह सर्वथा प्रमाणित हो जाता है कि इसे आजकल कहे जाने वाले अर्थशास्त्र (इकोनोमिक्स) की पुस्तक कहना भूल है। प्रथम अधिकरण के प्रारम्भ में ही स्वयं आचार्य ने इसे 'दण्डनीति' नाम से सूचित किया है। महाभारत के शांति पर्व के उनहत्तरवें अध्याय में कहा गया है-

**दण्डेन नीयते चेदं दण्डं नयति या पुनः।**
**दण्डनीतिरिति ख्याता त्रीन् लोकान अभिवर्तते।**[6]

अर्थात् यह संसार जिसके प्रभाव को प्राप्त करने में समर्थ हो उसे दण्ड कहते हैं। इसे दण्ड-नीति इसलिए कहा जाता है क्योंकि संसार दण्ड से संचालित होता है, अथवा जिस सिद्धान्त से दण्ड दिया जाता है, उसे दण्ड-नीति कहते हैं।

शुक्राचार्य ने दण्डनीति को इतनी महत्त्वपूर्ण विद्या बतलाया है कि इसमें अन्य सब विद्याओं का अन्तर्भाव मान लिया है- क्योंकि **'शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते'** की उक्ति के अनुसार शस्त्र (दण्ड) द्वारा सुशासित तथा सुरक्षित देश में ही वेद आदि अन्य शास्त्रों की चिन्ता या अनुशीलन हो सकता है। अत: दण्डनीति को अन्य सब विद्याओं की आधारभूत विद्या के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है और वही दण्डनीति अर्थशास्त्र है।

**इंद्रियजयः** रामायण, महाभारत, इतिहास, पुराण, मनुसंहिता, आदि धर्मशास्त्र और दण्डनीतिशास्त्र ने माना है कि राजा के लिए इन्द्रियजय अर्थात् आत्मसंयम आवश्यक है। कौटिल्य ने भि अपने अर्थशास्त्र में विनयाधिकारिक के प्रथम अधिकरण में इंद्रियजय के संदर्भ में अरिषडवर्गत्याग तथा राजर्षिवृत्त नामक तृतीय प्रकार में इंद्रियजय को विशेष महत्व देकर राजा के लिए इंद्रियजय के महत्व की भी उदाहरण सहित चर्चा की है।

कौटिल्य का कहना है कि इन्द्रियजय अध्ययन और संयम का कारण है। सभी विद्याओं का उद्देश्य इंद्रियों को वश में नियन्त्रण करना है। आत्मसंयम के बिना व्यक्ति कभी भी किसी कार्य में सफल नहीं हो सकता। इंद्रियों पर संयम न होने के कारण मन बेचैन हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप किसी भी विषय पर एकाग्रता और भक्ति से ध्यान केंद्रित करना संभव नहीं हो पाता है। इसके कारण कार्य में सफलता नहीं मिल पाती है। अत: राजा इन्द्रियों के बिना शासन का कठिन कार्य ठीक से नहीं कर पाता, वह राज्य में दण्ड का समुचित प्रयोग करने में सक्षम नहीं होता।

काम, क्रोध, लोभ, मान (आत्म-दम्भ), मद (अभिमान) और हर्ष (विषयों के भोग से सुख) - ये छह विषय लोगो का परम शत्रु हैं। उनके बहिष्कार से ही इन्द्रिय-सुख संभव है। कान, त्वचा, आंखें, जीभ और घ्राण मनुष्यो का ज्ञानेन्द्रिय है। इन पांच ज्ञान इंद्रियों के विषय

क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध हैं। चूँकि ऐसी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण एक ओर बिना शास्त्रीय सुधार के अनायास मे नही हो सकता है, दूसरी ओर यह शास्त्रीय अनुष्ठानों के प्रति समर्पण के माध्यम से भी हो सकता है।

इंद्रियों के जय के लिए कामदि ने जिन छह अभ्येन्तरिन शत्रुओं का उल्लेख किया है, उनके स्वरूप के बारे में कुछ कहा जाना आवश्यक है। (1) पराई स्त्रियों की इच्छा को काम कहा जाता है, (2) हिंसा को प्रेरित करने वाली विकृति को क्रोध कहा जाता है, (3) दूसरे की संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा को लोभ कहा जाता है, (4) मूर्खतापूर्वक स्वयं को अतुलनीय समझने को मान कहा जाता है, (5) धन, ज्ञान आदि से उत्पन्न अभिमान को मद कहा जाता है, और (6) इच्छित वस्तु का आनंद लेने से प्राप्त आनंद को हर्ष कहा जाता है।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार अरिषडवर्ग का त्याग करके इंद्रियों पर विजय प्राप्त करनी होती है और उससे ही सर्वोत्तम संभव है। अतः इंद्रियों का जय करना राजा के लिए आवश्यक है जबकि यह प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। क्योंकि राजा ही सबका संचालक और नेता है। अत: इस विषय के महत्व को स्पष्ट रूप से समझने के लिए कुछ राजाओं के नाम तथा उनके परिणामों का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए, भोजवंशीय राजा दण्डक्य और विदेह राजा कराला कम्पाराबाश बन गए और एक ब्राह्मण कन्या प्राप्त करना चाहते थे और ब्राह्मणत्व के कारण परिवार और राज्य नष्ट हो गए। क्रोध से अभिभूत होकर राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों पर और राजा तालजंघा ने भृगुवों पर अपना पराक्रम दिखाकर नष्ट कर दिया। इसी प्रकार इलापुत्र पुरुरबा और सौबी देश के राजा अजर्बिंदु, चार जातियों, ब्राह्मणों आदि के क्रोध में नष्ट हो गए, जिन्होंने लालच के कारण भारी धन इकट्ठा करते हुए उन पर अकथनीय अत्याचार किया। राक्षस राजा रावण इतना घमंडी था कि उसने सीता को रामचन्द्र को नहीं लौटाया, और कौरव राजा दुर्योधन ने पांडवों को उनके राज्य का एक हिस्सा भी नहीं लौटाया, और परिवार नष्ट हो गया। अहंकार के कारण, राजा दंभध्वव को नर और नारायण द्वारा और हेहय देश के राजा कार्तविरार्जुन परशुराम द्वारा मार दिया गया था। असुर ऋषि बतापी द्वारा ऋषि अगस्त्य पर हमला करने और यदुवंशियों द्वारा व्यासदेव पर अत्यधिक अत्याचार करने से हर्ष वष्टा को नष्ट कर दिया गया था।

दूसरी ओर कामदि ने छह रिपु पर विजय प्राप्त की, जितेंद्रिय के रूप में जमदग्नि के पुत्रों परशुराम, नाभाग और अंबरीश ने लंबे समय तक पृथ्वी पर शासन किया। इसलिए राजा को काम-वासना छोड़कर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी होगी। मनु यह भी कहते हैं कि

**इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद् दिवानिशम्।**
**जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजा।।**[7]

राजा जीतेन्द्रिय काम, क्रोध, लोभ, हर्ष और मद की बुराइयों का त्याग करके सुखपूर्वक रहना चाहिए।

सुशासन एक विशेषण शब्द है और यह अपने आप में कुछ कहने से युक्त होता है, जबकि शासन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो एक मूल्यवान प्रणाली की ओर इशारा करती है। एसिलिए कौटिल्य ने कल्याणकारी राज्य या राष्ट्र की स्थापना के लिए सबसे महत्वपूर्ण सुशासन का आवश्यकता वर्णन की है।

**मूल्यायनः** आधुनिक समय में शासन को तीन अर्थों में समझा जा सकता है। सबसे पहले, यह एक शासन है या राजनीतिक व्यवस्था जिसमें आम जनता का शासन होता है। दूसरा, यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिकार का प्रयोग करके देश के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों का समुचित प्रयोग किया जाता है। तीसरा, यह एक ऐसा तंत्र है जिसमें सार्वजनिक नीतियाँ तैयार की जा सकती हैं और गतिविधियाँ की जा सकती हैं व्यापक जनहित को कायम रखा जा सके। सुशासन एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसके द्वारा प्राचीन भारतीय संस्कृति और उसका राजनीतिक मतादर्श को अनुभव किया जाता है। जिसमें सरकारी अधिकारियों के कर्तव्य और सद्व्यवहार, सदाचरण के निदर्शन प्रतिफलित होता है। राजा का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न रखना, सत्य का अनुसंधान करना तथा उत्तरदायित्वपूर्वक कार्य करना था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा के आचरण के संबंध में नियमों का वर्णन किया गया है अपने अधिकारियों और न्यायाधीशों के आचरण के प्रति। इसके अनुसार राजा ने संपादन करते समय स्व व्यक्तिगत कार्य तथा राजसी कार्य, आदेश देते हैं कि सभी अधिकारी नागरिक के भलाई के लिए हि केवल कार्य करें। राजा से सर्वोत्तम आचरण की अपेक्षा की जाती है। उनके अनुसार, राजा का कार्य प्रजा की भलाई के लिए होता है और जो भी अच्छा हो या राजा को प्रसन्न करता हो, उसे वही करना चाहिए न केवल अच्छा माना जाए बल्कि जो लोगों को अच्छा लगे वही माना जाए अच्छा।

कौटिल्य की प्रशासनिक व्यवस्था में सुशासन की झलक देखी जा सकती है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र सुशासन की कला और विज्ञान का विस्तार से वर्णन है। सुशासन का लक्ष्य उसके प्रशासन से ही प्राप्त किया जा सकता है। कौटिल्य राज्य प्रशासन के दो लक्ष्य हैं: (1) राज्य को आर्थिक रूप से सुदृढ बनाना, और (2) लोगों को जीवन के लक्ष्य, यानी त्रिवर्ग- धर्म, अर्थ, काम का एहसास कराने में मदद करना। बाद में मोक्ष को जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में जोड़ा गया। उनमें से कौटिल्य ने अधिक महत्व दिया अर्थ या धन की ओर, क्योंकि इसी पर लोगों का कल्याण निर्भर था।

अतः हम कह सकते हैं कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार सुशासन का तात्पर्य है राजनीतिक व्यवस्था जिसमें राजा अपनी शक्ति का प्रयोग आर्थिक और सामाजिक उपयोग में करता है अपनी प्रजा के कल्याण के लिए। सुशासन टिकाऊपन के लिए एक रूपरेखा है मानव विकास।

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति, समाजनीति, तथा विविध विद्यादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन

का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान् है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है।

**सन्दर्भग्रन्थसूची**

*कौटिल्यीय अर्थशास्त्र*। ड. वसु अनिल चन्द्र। कोलकाता संस्कृत वुक डिपो, पुनर्मुद्रण 2011।

*कौटिल्यीय अर्थशास्त्र*। ड. वन्द्योपाध्याय मानवेन्दु एवं श्री अशोककुमार। कोलकाता सदेश, तृतीय संस्करण 2010।

*कौटिल्यीयम् अर्थशास्त्रम्*। ड. वन्द्योपाध्याय मानवेन्दु। कलिकाता संस्कृत पुस्तक भाण्डार, प्रथम संस्करण 2002।

*कौटिल्यीय-अर्थशास्त्र*। गैरोला वाचस्पति। वाराणसी चौखाम्बा विद्या भवन, 2015।

*कौटिल्यीय अर्थशास्त्र*। डाँ. तिवारी श्यामलेश कुमार। वाराणसी चौखाम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2017।

*चाणक्यनीतिदर्पणः*। डाँ. चौधुरी गुञ्जेश्वर। वाराणसी चौखाम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2016।

*चाणक्यनीतिदर्पणः*। डाँ. त्रिपाठी ब्रह्मानन्द। वाराणसी चौखाम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2002।

*मनुस्मृतिः*। पण्डित भट्ट रामेश्वर। वाराणसी चौखाम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2015।

*मनुस्मृतिः*। आचार्य शिवराज। वाराणसी चौखाम्बा विद्या भवन, 2017।

*मनुस्मृतिः*। पाण्डे जनार्दन शास्त्री। वाराणसी मोतिलाल वानारसीदास पावलिकेशन, 1998।

*धर्म-अर्थ-नीतिशास्त्रसमीक्षा*। ड. वसु सुमिता। कोलकाता वलराम प्रकाशनी, 2018।

**सन्दर्भग्रन्थ:**

[1] अर्थशास्त्र – 1.1.1

[2] अर्थशास्त्र – 1.19.5

[3] अर्थशास्त्र – 1.3.3

[4] चाणक्यसूत्र – 1.6

[5] अर्थशास्त्र – 1.10.14

[6] महाभारत शान्तिपर्व - 78

[7] मनुसंहिता – 7.44